ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 75-79
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

सनातन संस्कारों के आलोक में जैन संस्कार

1. डॉ0 अवनीन्द्र कुमार पाण्डेय
2. डॉ0 प्रमोद कुमार सिंह

1. सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, रामबचन सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय, बगली पिजड़ा, मऊ,(उ0प्र0), 2. सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), नयी दिल्ली, भारत

Received-16.07.2023, Revised-22.07.2023, Accepted-27.07.2023 E-mail: pandeyawanindra63@gmail.com

सारांशः ***भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और महानतम संस्कृति है। भारतीय ऋषियों ने मानव जीवन की सुख–शान्ति एवं प्रगति की महत्ता को समझते हुए एक उत्तम संस्कृति के निर्माण हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। हमारे सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों का एकमात्र प्रयोजन व्यक्ति को अधिकाधिक निर्मल, उदार, सद्गुणी, संयमी एवं परमार्थ–परायण बनाना है। एतदर्थ ही धर्मशास्त्रों में अनेकानेक नियमों, उपनियमों एवं विभिन्न विधानों का प्रावधान किया गया है। इन्हीं विधानों में से एक विधान है – संस्कार।***

संस्कार का अर्थ – 'संस्करोतीति संस्कारः' अथवा 'संस्करणं संस्कारः' अर्थात् जिसके द्वारा शुद्ध या परिष्कृत किया जाए, उसे 'संस्कार' कहते हैं। यहाँ संस्कार से तात्पर्य मनुष्य के मन, बुद्धि एवं भावना को चमकाने या विकसित करने से है। संस्कार की एक परिभाषा दी जाती है – संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्याद्योषापनयनेन वा । अर्थात् मनुष्य में गुणाधान करने एवं उसके दोषों के दूरीकरण के लिए होने वाली प्रक्रिया ही 'संस्कार' है।

कुंजीभूत शब्द– निर्मल, उदार, सद्गुणी, संयमी, परमार्थ–परायण, प्रावधान, संस्कार,संस्करोतीति संस्कारः,:संस्करणं संस्कारः।

प्राचीन काल में ऋषियों ने संस्कारों का निर्माण मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व के परिष्कार के लिए किया था। यह विश्वास किया जाता था कि संस्कारों के अनुष्ठान से व्यक्ति में दैवीय गुणों का आविर्भाव हो जाता है। आचार्य मनु का कहना है कि संस्कार शरीर को शुद्ध करके उसे आत्मा के निवास के योग्य बनाते हैं। इस प्रकार मानव जीवन को पवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने वाले आध्यात्मिक उपचार का नाम ही 'संस्कार' है।

संस्कारों की संख्या– बालक के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवन–यापन की विभिन्न परिस्थितयों से गुजरते हुए शरीर छोड़ने तक विविध अवसरों पर संस्कारों के आयोजन का विधान धर्मशास्त्रों में विहित है। विभिन्न धर्मशास्त्रों में संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न प्राप्त होती है। यथा आश्वलायन गृह्यसूत्र में 12, पारस्कर गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र और मनुस्मृति में 13, वैखानस गृह्यसूत्र में 18, याज्ञवल्क्य स्मृति में 11, गौतम धर्मसूत्र में 40 तथा व्यास स्मृति में 16, परन्तु सामान्यतः 16 संस्कार ही प्रसिद्ध एवं स्वीकार्य हैं। जैनपरम्परा में 40 से लेकर 120 संस्कारों का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में सनातन विहित सुप्रसिद्ध 16 संस्कारों के में आलोक जैनपरम्पराप्राप्त संस्कारों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

विषय–विवेचन– जैन धर्मग्रन्थों में संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न स्वीकार की गयी है। श्वेताम्बर परम्परा में जहाँ संस्कारों की संख्या 40 है, वहीं दिगम्बर परम्परा में इनकी संख्या 108 तक हो जाती है। श्वेताम्बर परम्परा के वर्धमानसूरि कृत ग्रन्थ 'आचार दिनकर' में जिन 40 संस्कारों का विवेचन है। उनमें 16 गृहस्थों के लिए, 16 मुनियों के लिए और 8 सामान्य संस्कार हैं, जो दोनों के लिए माने गये हैं। जबकि दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन कृत ग्रन्थ 'आदि पुराण' में उल्लिखित 108 संस्कारों में 53 गर्भान्वय क्रियाएं, 48 दीक्षान्वय क्रियाएं और 7 कर्त्रन्वय क्रियाएं हैं।

यहाँ पर श्वेताम्बर परम्परा में स्वीकृत 40 संस्कारों में से गृहस्थों के लिए निर्धारित 16 संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, जन्मसंस्कार, सूर्यचन्द्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचि, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकर्म, उपनयन, विद्यारम्भ, विवाह, व्रतारोपण और अन्त्य) का ही सनातन संस्कारों के आलोक में समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत है। यहाँ ध्यातव्य है कि दोनों परम्पराओं के संस्कारों में कुछ विभेद भी प्राप्त होता है।

1. गर्भाधान संस्कार – षोड़श संस्कारों में यह प्रथम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है। सनातन परम्परा के अनुसार जिस कर्म द्वारा स्त्री में गर्भ का आधान किया जाता है, उसे गर्भाधान संस्कार कहा जाता है। यह अत्यन्त धार्मिक और पवित्र कर्तव्य है। शास्त्रानुसार यह संस्कार उत्तम संकल्प और पवित्र विचारों के साथ किसी शुभ मुर्हुत में करना चाहिए। मनु ने इस संस्कार को इहलोक और परलोक में पवित्र करने वाला शरीर संस्कार माना है। जैन धर्म में श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार गर्भ के संरक्षण और उसे संस्कारित करने हेतु जैन ब्राह्मण के द्वारा गर्भधारण के पाँच मास पूर्ण होने पर शुभ वार, तिथि, नक्षत्र आदि में यह संस्कार किया जाता है।

2. पुंसवन संस्कार – आचार्य शौनक कहते हैं कि जिस कर्म द्वारा पुत्र (सन्तान) उत्पत्ति की कामना की जाय वह कृत्य पुंसवन है। इस संस्कार का उद्देश्य तेजस्वी सन्तान के जन्म की कामना करना है। यह संस्कार गर्भ में स्पन्दन प्रारम्भ होने के पूर्व ही कर लेना चाहिए। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार यह संस्कार गर्भ के तीसरे या चौथे महीने में पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल आदि पुंलिंग नाम वाले नक्षत्र के दिन गर्भिणी को उपवासोपरान्त स्नानादि के बाद पूर्वाभिमुख बैठाकर करना चाहिए। जबकि जैन श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह संस्कार गर्भ के आठ मास पूर्ण होने पर, सर्वदोहद पूर्ण होने के पश्चात् गर्भस्थ शिशु के सम्पूर्ण अंग उपांग विकसित होने पर शरीर में पूर्णीभाव प्रमोद रूप स्तनों में दूध की उत्पत्ति के सूचकार्थ किया जाता है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार – सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् तत् सीमन्तोन्नयनमिति। इस संस्कार के अन्तर्गत पति स्त्री के बालों को संवार कर उसके सीमन्त अर्थात् माँग में सिन्दूरदान करता है। यह संस्कार गर्भ के चौथे या आठवें महीने में किया जाता है। चरक

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

का कहना है कि इस समय गर्भवती के सम्पूर्ण दोहदों (इच्छाओं) को पूर्ण करना चाहिए। इस संस्कार के समय से स्त्री को अपवित्र स्थान पर जाने, नदी में स्नान करने, रात्रि में जगने तथा भारी भोजन करने की अनुमति नहीं दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य गर्भवती को प्रसन्न एवं नीरोग रखना तथा गर्भ को स्थिर एवं श्रेष्ठ बनाये रखना था। जैन धर्मग्रन्थों में इस संस्कार का या इसके तुल्य किसी भी संस्कार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

4. जातकर्म संस्कार – यह संस्कार जातक के जन्म के बाद किया जाता है। याज्ञवल्क्य इस संस्कार का उचित समय बालक के गर्भ के बाहर आने पर मानते हैं , जबकि मनु इसे नाभिच्छेदन से पूर्व ही करने का विधान करते है। इस संस्कार में बालक के जन्म के तुरन्त बाद पिता द्वारा अपनी चौथी अंगुलि से उसे शहद और घृत चटाने का विधान है। इस संस्कार का उद्देश्य शिशु को अमंलकारी शक्तियों के प्रभाव से बचाना तथा उसके स्वस्थ और दीघार्यु होने की कामना करना है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में इस संस्कार को जन्म संस्कार के नाम से जाना जाता है। यह संस्कार लौकिक एवं अलौकिक शक्तियों के भय से माँ एवं शिशु की रक्षा के उद्देश्य से गर्भकाल की अवधि पूर्ण होने पर कुलगुरु द्वारा किसी जानकार ज्योतिषी के साथ एकान्त में जाकर पंचपरमेष्ठी का जाप करते हुए सम्पन्न कराया जाता है।

5. नामकरण संस्कार – यह एक प्रमुख संस्कार है। इस संस्कार के अन्तर्गत जातक का नाम निर्धारण किया जाता है। मनु के मत में यह संस्कार जातक के जन्म के 10वें या 12वें दिन , जबकि याज्ञवल्क्य इसे 11वें दिन में करने की सलाह देते हैं। यह संस्कार ब्राह्मणों और परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में देवताओं की पूजा के बाद पिता द्वारा पुत्र के दाहिने कान में नामोच्चारण तथा दीघार्यु कामना के साथ सम्पन्न किया जाता है। यतो हि नाम ही व्यक्ति की पहचान होती है। अतः मनु कहते हैं कि ब्राह्मण के नाम शुभसूचक और शर्मा उपाधि, क्षत्रिय के वीर्यसूचक और वर्मा उपाधि, वैश्य के धनसूचक और धनपति उपाधि तथा शूद्र के निन्दासूचक और दास उपाधि वाले होने चाहिए।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार शुचि कर्म के दिन अथवा उसके दूसरे या तीसरे दिन या अन्य कोई शुभ दिन देखकर मृदु, ध्रुव एवं क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में गुरु एवं शुक्र के चतुर्थस्थानक होने पर करना चाहिए। इस अवसर पर गृहस्थ गुरु पंचपरमेष्ठी मंत्र का स्मरण करते हुए शिशु के पितृपक्ष के लोगों की उपस्थिति में जन्म–लग्न के अनुसार नामकरण करे तथा विधि–विधान पूर्वक पूजनोपरान्त जिन प्रतिमा के समक्ष कुलवृद्धा से शिशु का नाम प्रकट करे।

6. निष्क्रमण संस्कार – निष्क्रमण से अभिप्राय जातक को पहली बार घर से बाहर ले जाने से है। इस संस्कार के अन्तर्गत शिशु को सूर्य तथा चन्द्रमा की ज्योति का प्रथम दर्शन कराया जाता है। जातक के जन्म के तीसरे मास में सूर्यदर्शन और चौथे मास में चन्द्रदर्शन का विधान है। आचार्य मनु इस संस्कार को चतुर्थ मास में करने का परामर्श देते हैं– **चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहा।**

याज्ञवल्क्य ने भी इस संस्कार हेतु चतुर्थ माह उचित माना है। हिन्दू परम्परा में शिशु का पिता उसे गोद में लेकर गोबर से लीपे हुए तथा स्वास्तिक बनाकर धान बिखेरे हुए स्थान पर खड़े होकर सूर्यदर्शन कराता है। इस संस्कार का उद्देश्य जातक को भगवान भास्कर के तेज और चन्द्रमा की शीतलता से परिचित कराना है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में इसे सूर्यचन्द्रदर्शन संस्कार कहते हैं। इसे जन्म के तीसरे दिन करने का विधान है। आचारदिनकर के अनुसार इस संस्कार को गृहस्थ गुरु समीपस्थ गृह में अर्हत् की विधि पूर्वक उपासना के उपरान्त जिन प्रतिमा के सम्मुख सूर्य प्रतिमा स्थापित कर शिशु और माता को स्नान कराकर सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित करके कराता है।

7. अन्नप्राशन संस्कार – अन्नप्राशन से तात्पर्य जातक को प्रथम बार अन्न खिलाने से है। आचार्य मनु और पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार यह संस्कार जातक के जन्म के छठें मास या वंश परम्परानुसार किया जाना चाहिए। यह संस्कार किसी शुभ तिथि या मुहुर्त में ईश्वराराधना के साथ ही जातक के पिता द्वारा खीर खिलाने से सम्पन्न होता है। इस संस्कार का उद्देश्य जातक के शारीरिक और मानसिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करना है। शास्त्रों में अन्न को प्राणरूप कहा गया है। अतः जातक को अन्नग्रहण के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक रूप से बलवान एवं प्रबुद्ध बनाया जाता है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार बालक के जन्म के छठें मास एवं बालिका के जन्म के पाँचवें मास में शुभ तिथि, वार एवं नक्षत्र में सम्पन्न होता है। सर्वप्रथम अर्हत् प्रतिमा को वृहत्स्नात्रविधि से पंचामृत स्नान कराने के उपरान्त तैयार व्यंजनों का भोग लगाकर पुनः उसे कुलदेवता को चढ़ाने के पश्चात् गीतादि के साथ ही शिशु को खिलाने का विधान है।

8. चूड़ाकर्म संस्कार – इसे मुण्डन भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत बालक के शिर पर केवल शिखा के बाल छोड़कर शेष का मन्त्रोच्चार पूर्वक मुण्डन कर दिया जाता है और उन बालों को गुप्त स्थान पर मिट्टी में दबा दिया जाता है। प्रारम्भ में यह संस्कार घर में ही हुआ करता था। परन्तु बाद में इसे किसी धार्मिक स्थल या नदी के किनारे किया जाने लगा। मनु के अनुसार इसे जातक के एक वर्ष या तीन वर्ष का होने पर करना चाहिए–

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।।

मनु इसके महत्त्व के विषय में कहते हैं कि इस संस्कार से द्विजों के जन्म सम्बन्धी दोष नष्ट हो जाते हैं। सुश्रुत का कहना है कि केशों और नखों को काटने से शिशु के सौभाग्य और उत्साह में वृद्धि होती है। जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार बालक के सूर्यबल और चन्द्रबल को देखकर शुभ तिथि, वार एवं नक्षत्र में कुल परम्परानुसार करने का विधान है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

9. कर्णवेध संस्कार – कर्णवेध से तात्पर्य शिशु के कानों को छेदने से है। इस संस्कार को चूड़ाकर्म के पहले या बाद में तीसरे या पाँचवें वर्ष में पुष्य, मृगशिरा आदि शुभ नक्षत्रों में मंत्रोच्चारण पूर्वक स्वर्ण या चाँदी की शलाका से पहले दाहिने पुनश्च बाये कान में करने का विधान है। आरम्भ में यह संस्कार पिता द्वारा किया जाता था, लेकिन बाद में एतदर्थ सुनार को आमन्त्रित किया जाने लगा। आचार्य सुश्रुत का कथन है कि कर्णवेध करने से आन्त्रवृद्धि आदि रोगों से रक्षा होती है। कर्णवेधन से व्याधियाँ दूर होती हैं, श्रवण शक्ति बढ़ती है, मोटापा तथा इन्द्रिय नियंत्रण में सहायता प्राप्त होती है और कानों में धारण किये गये आभूषण सौन्दर्यवर्द्धक भी होते हैं। जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार विधि–विधान पूर्वक शुभ वर्ष, मास, दिन आदि देखकर कुल परम्परानुसार बालक के जन्म के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष में कुलदेवता के स्थान पर किया जाता है।

10. विद्यारम्भ संस्कार – शिशु के मस्तिष्क के विकसित होने के साथ ही अक्षर ज्ञान कराने के उद्देश्य से यह संस्कार किया जाता है। यह संस्कार बालक के जन्म के पाँचवें या सातवें वर्ष में आषाढ़ से कार्तिक तक छोड़कर शेष महीनों में शुभ मुहुर्त में गणेश, सरस्वती, वृहस्पति और गणदेवता की पूजा के साथ बालक को गुरु द्वारा अक्षर ज्ञान देने से आरम्भ किया जाता है, और बालक की मानसिक सफलता की कामना के साथ सम्पन्न होता है। सुधी बालक को द्वितीय जन्म अर्थात् उपनयन के पूर्व अक्षरारम्भ अवश्य करा देना चाहिए।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार उपनयन के समान ही शुभ दिन और लग्न होने पर किया जाता है। वर्धमान सूरि इस संस्कार के समय के विषय में मौन हैं।

11. उपनयन संस्कार – उपनयन संस्कार बौद्धिक विकास के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। वेद ज्ञान हेतु बालक को आचार्य के पास ले जाना ही उपनयन कहलाता है। मनु का कहना है कि यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए क्रमशः जन्म के 8वें, 11वें तथा 12वें वर्ष में करना चाहिए। तथा अधिकतम 16वें, 22वें और 24वें में। जबकि विशिष्ट ज्ञान, शूरता–वीरता एवं धन सम्पत्ति हेतु इसे 5वें, 6वें तथा 8वें वर्ष में ही कर लेना चाहिए। इस संस्कार में बालक के शिर के केश उतार दिये जाते थे, केवल शिखा ही मुण्डित शिर पर रह जाती थी। वह जनेऊ धारण करता था और विशेष वस्त्र धारण कर गुरुकुल में अध्ययन के योग्य हो जाता था। इस संस्कार के होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विज कहा जाता था। मनु कहते हैं कि इस संस्कार के करने से द्विजों के गर्भ और बीज सम्बन्धी दोष नष्ट हो जाते हैं। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन के साथ आत्मिक विकास में रत रहने के लिए बालक को प्रेरित करना है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में यह संस्कार मनुष्यों के वर्ण विशेष में प्रवेश हेतु, तदनुरूप वेश एवं मुद्रा धारण करने हेतु तथा अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग में प्रवेश करने के निमित्त ब्राह्मणों का गर्भाधान जन्म के 8वें, क्षत्रियों का 11वें तथा वैश्यों का 12वें वर्ष में किया जाता है। इसके बाद ही बालक वेदाध्ययन के योग्य होता है। इसमें पहले उपनेय व्यक्ति का तेल मर्दन और स्नानादि के उपरान्त लग्नदिन आने पर गृहस्थ गुरु पौष्टिक कर्म करके शिखा छोड़कर शेष बालों का मुण्डन करवाता है।

12. वेदारम्भ संस्कार – इस संस्कार से तात्पर्य वेदाध्ययन आरम्भ करने से है। उपनयन के बाद ही बालक वेदाध्ययन और गायत्री जप का अधिकारी होता था। अतः उपनयनोपरान्त बालक को वेदों के अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचय हेतु योग्य आचार्य के पास गुरुकुल में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे। किसी शुभ मुहुर्त में अपनी शाखा के अध्ययन के साथ ही इसका आरम्भ होता था। डॉ. राजबली पाण्डेय कहते हैं कि इस संस्कार का उल्लेख सर्वप्रथम व्यास स्मृति में प्राप्त होता है। जैन धर्म में इस संस्कार का पृथकतः कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

13. केशान्त संस्कार – यह संस्कार वेदाध्ययन पूर्ण होने पर होता था। आचार्य मनु का कहना है कि यह संस्कार 16वें वर्ष में किया जाता है –

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः।।

वेद, पुराण एवं विविध विषयों मे पारंगत होने के बाद ब्रह्मचारी के समावर्तन संस्कार के पूर्व केशों को स्वच्छ कर स्नानादि के उपरान्त स्नातक की उपाधि दी जाती थी। कुछ आचार्य इसको पृथक संस्कार नहीं मानते हैं।

14. समावर्तन संस्कार – यह संस्कार बालक के वेदाध्ययन का कार्य पूर्ण होने पर किया जाता था। यह गृह की ओर लौटने का द्योतक है। इसे प्रत्यायन संस्कार भी कहते हैं। इसमें बालक को सुगन्धित पदार्थों एवं ओषधियों से परिपूर्ण जल से विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ स्नान कराने का विधान है। इसके बाद ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत के समय धारण की गयी मेखला, दण्ड आदि का परित्याग कर देता था तथा आचार्य के द्वारा स्नातक की उपाधि प्राप्त कर और गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त कर सगर्व गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। जैन धर्मग्रन्थों में इस संस्कार का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

15. विवाह संस्कार – यह संस्कार प्राचीन काल से ही विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। यज्ञोपवीत से समावर्तन तक ब्रह्मचर्य व्रत के अनुपालन के बाद युवक में सामाजिक परम्पराओं के निर्वाह की योग्यता आने पर यह संस्कार होता था। विवाह पूर्ण युवा होने पर ही होता था। आचार्य सुश्रुत विवाह के लिए पुरुष की आयु 25 वर्ष और कन्या की आयु 16 वर्ष सर्वोत्तम मानते हैं –

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वागतौ वीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्।।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

यह संस्कार बड़े धूमधाम से विधि–विधान पूर्वक अग्नि की परिक्रमा और सात वचनों के साथ सम्पन्न होता था। वस्तुतः इसे एक यज्ञरूप ही माना गया है। इससे मनुष्य के पुरुषार्थ–चतुष्टय की सिद्धि होती है तथा वह संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से मुक्त हो जाता है। जैन श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य वर्धमान सूरि का कहना है कि कन्या का विवाह आठ वर्ष और पुरुष का विवाह आठ से अस्सी वर्ष के मध्य करना चाहिए। वह विवाह को समान कुल शील वालों में ही करने की सलाह देते हैं।

16. अन्त्येष्टि संस्कार – यह अन्तिम संस्कार है। इसे अग्नि परिग्रह भी कहा जाता था। आत्मा में अग्नि का आधान करना ही अग्नि परिग्रह कहलाता है। शास्त्रों में वर्णित है कि इस क्रिया को विधिवत् करने से जीव की अतृप्त वासनाएं शान्त हो जाती हैं। इस संस्कार में मानव के मृत शरीर को विधि–विधान पूर्वक अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। इसके लिए शास्त्रकारों ने अलग–अलग विधियां बतायीं हैं। इस संस्कार के बाद व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार इहलोक का त्याग कर परलोक चला जाता है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य वर्धमान सूरि ने इस संस्कार के अन्तर्गत मृत्यु से पूर्व की साधना और मृत्यु के पश्चात् की क्रियाओं – दोनों को स्वीकार किया है। उनके मत में यह संस्कार मृत्यु की सन्निकटता को जानकर विधि–विधान पूर्वक किया जाता है। इसके अन्तर्गत संलेखना विधि की आराधना पर विशेष बल दिया गया है।

जैन श्वेताम्बर परम्परा में जिन 16 संस्कारों का विवेचन है उनमें सनातन परम्परा से भिन्न चार संस्कार हैं – क्षीराशन, षष्ठी, शुचि और व्रतारोपण। जो क्रमशः शिशु को प्रथम बार दुग्ध पान कराने, अनिष्ट शक्तियों के निवारण, सूतक सम्बन्धी दोषों के निवारण और मनुष्य जन्म की प्राप्ति या स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति से सम्बन्धित हैं।

निष्कर्ष– इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन परम्परा के संस्कारों को ही आंशिक परिवर्तन के साथ जैन आचार्यों ने भी स्वीकार किया है। वस्तुतः संस्कारों द्वारा व्यक्ति जन्म और कर्म विषयक सभी दोषों से मुक्त होकर स्वयं को पवित्र, सुरक्षित और समुन्नत अनुभव करता है। यदि संस्कार विधि–विधान पूर्वक सम्पन्न किये जायें तो व्यक्ति में अवश्यमेव सरलता, सुन्दरता, सज्जनता और सौहार्द्र आदि गुणों का समावेश परिलक्षित होगा। वर्तमान समाज की परिस्थितियों को देखते एक बार पुनः इन संस्कारों को अमल में लाने और इनके मूल भावनाओं से लोगों को परिचित कराने की आवश्यकता अनुभूत होती है।

1. ब्रह्मसूत्रभाष्य, 1/1/4.
2. गर्भः सन्धार्यते येन कर्मणा तत् गर्भाधानम् – हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्यादृ 59.
3. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, प्रथम उदय।
4. पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम् दृहिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या 74.
5. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, द्वितीय उदय।
6. हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या – 78.
7. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/2/11.
8. मनुस्मृति, 2/29.
9. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, तृतीय उदय।
10. मनुस्मृति, 2/30.
11. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/2/12.
12. मनुस्मृति, 2/31–32.
13. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, अष्टम उदय।
14. ततः तृतीये मासे कर्तव्यं सूर्यदर्शनम्।
15. चतुर्थे मासे कर्तव्यं शिशोः चन्द्रदर्शनम्। – हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या–111.
16. मनुस्मृति, 2/34.
17. अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः। – याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/2/12.
18. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, चतुर्थ उदय।
19. षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले। – मनुस्मृति, 2/34.
20. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, नवम उदय
21. मनुस्मृति, 2/35.
22. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, ग्यारहवाँ उदय।
23. हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या – 130.
24. वही, पृष्ठ संख्या – 129.
25. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, दशवाँ उदय।
26. द्वितीयजन्मतः पूर्वमारभेताक्षरान् सुधीः । – हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या– 141.
27. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, तेरहवाँ उदय।
28. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
29. गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः। – मनुस्मृति, 2/36.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

30. मनुस्मृति, 2/38.
31. मनुस्मृति, 2/37.
32. मनुस्मृति, 2/27.
33. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, बारहवाँ उदय।
34. हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या–182.
35. मनुस्मृति, 2/65.
36. तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्। – हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या 187.
37. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, चौदहवाँ उदय।
38. आचार दिनकर, प्रथम खण्ड, चौदहवाँ उदय।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्धमानसूरिकृत आचारदिनकर, (अनुवाद) साध्वी श्री मोक्षरत्ना श्रीजी, प्राच्यविद्यापीठ, शाजापुर, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2005.
2. जैनसंस्कार एवं विधि–विधान, (सम्पादन) आचार्य सागरमल जैन, प्राच्यविद्यापीठ, शाजापुर, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2007.
3. हिन्दू संस्कार (लेखन) डॉ. राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
4. मनुस्मृति, (अनुवाद) डॉ. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली, 2004.
5. The Grihya Sutras, Hermann Oldenberg, Oxford, 1892.

*****